

मीरा के भक्ति काव्य में ईश्वर, माया और जगत की स्थिति

डॉ. संदीप रणभिरकर

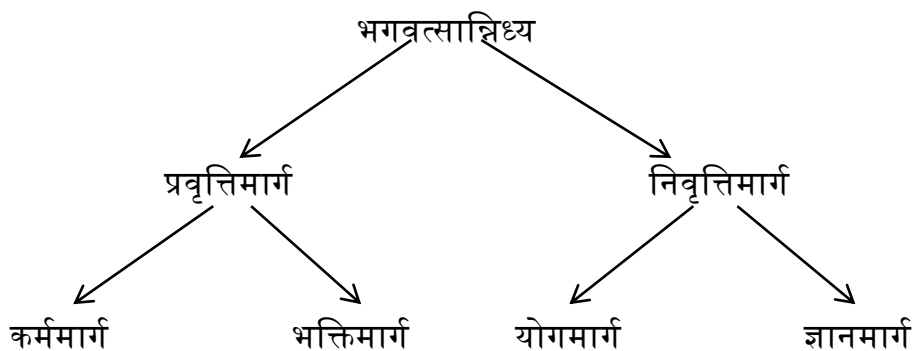
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
बान्दरसिंदरी, किशनगढ़ – 305801, जिला-अजमेर (राजस्थान)
E-mail: sandeepvr25@gmail.com

सारांश: मध्यकाल में मीरा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। मीरा की दार्शनिकता मध्यकाल में नूतन मानदण्ड स्थापित करती है। मीरा की भक्ति में व्यक्त ईश्वर, माया एवं जगत संबंधी विचारों के जरिए भी उनकी दृढतम प्रेम-भावना को ही वाणी मिली है। उनके ईश्वर एक ओर तो रसिक रूप में मोहित करते हैं तो दूसरी ओर लोकरक्षक के रूप में भक्तों का उद्धार भी करते हैं। उनकी दृष्टि में भक्ति पथ का सबसे बड़ा व्यवधान माया है। अतः भक्त को उस से मुक्ति हेतु प्रयत्नरत होना चाहिए। माया भ्रममूलक है जिससे भगवत-प्रेम ही उबार सकता है। इसके लिए भक्त में दृढ संकल्प एवं इच्छाशक्ति की आवश्यकता है। तथा जगत नश्वर होने के साथ-साथ चार दिन की चाँदनी है। अतः भक्त को इसके मोह से बाहर निकलना चाहिए। मीरा के ये विचार निश्चित ही वर्तमान स्वार्थमय परिवेश में अपनी उपादेयता रखते हैं।

विषय संकेत: भक्ति काव्य, मीराबाई, मध्यकाल, दार्शनिकता।

प्रस्तावना:

मनुष्य जीवन का लक्ष्य आनंद की प्राप्ति है। अतः आनंद प्राप्ति हेतु मनुष्य अपनी अंतिम सांस तक प्रयत्नशील रहता है। अपने इन्द्रिय-सहयोग से वह निरंतर आनंद प्राप्ति में तत्पर दिखाई पड़ता है। किन्तु यह आनंद सांसारिक होने के कारण क्षणिक होता है तथा इसका पर्यवसान दुःख में होता है। निरंतर इस क्षणिक दुःख के पीछे दौड़कर मनुष्य दुःख का भागी बनता है। वास्तविक आनंद तो भगवत्सान्निध्य से ही प्राप्त हो सकता है। अतः शाश्वत आनंद की प्राप्ति हेतु वह भगवत्सान्निध्य की ओर उन्मुख होता है। भगवत्सान्निध्य की प्राप्ति हेतु दो मार्ग प्रमुख हैं – प्रवृत्तिमार्ग एवं निवृत्तिमार्ग। प्रवृत्तिमार्ग में शरीर की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को ईश्वरोन्मुख कर उसकी प्राप्ति की जाती है। इसके दो भेद हैं – कर्ममार्ग एवं भक्तिमार्ग। निवृत्तिमार्ग में प्रतिकूल वृत्तियों की निवृत्ति करके विवेक द्वारा अनात्म को त्यागते हुए ईश्वर का साक्षात्कार किया जाता है। इसके भी दो भेद माने गए हैं – योगमार्ग एवं ज्ञानमार्ग।



इन मार्गों में भक्तिमार्ग को सर्वश्रेष्ठ माना गया है क्योंकि यह सहजसाध्य एवं सर्वसुलभ है। भक्ति ही ईश्वर और जीव के पारस्परिक सम्बन्ध का निर्धारण है। 'शांडिल्य भक्तिसूत्र' के अनुसार – 'सा पुरानुरक्तिरीश्वरे' अर्थात् ईश्वर में अनुरक्ति ही भक्ति है। 'नारद भक्तिसूत्र' के अनुसार - "सा त्वस्मिन् परम प्रेम-रूपा अमृत-स्वरूपा च। तत्रापि महात्म्य ज्ञान विस्मृत्यपवादः तद्विहीनं जाराणामिव।" अर्थात् भक्ति ईश्वर के प्रति परम-प्रेम रूपा और अमृत स्वरूपा है। फिर भी ईश्वर के महात्म्यज्ञान का विस्मरण नहीं होना चाहिए अन्यथा वह व्यभिचारियों के प्रेम-तुल्य हो जाएगी।

हिंदी साहित्य में 'स्वर्णयुग' के नाम से अभिहित भक्तिकाव्य समग्रतः भक्ति के प्रति समर्पित है। अतः यह काव्य भक्तिमार्ग का उद्घोष करता है। इस काव्य का सबसे बड़ा आकर्षण यही है कि इस काल में सूर, तुलसी, कबीर, जायसी, नानक, मीरा जैसे एक से बढ़कर एक मूर्धन्य साहित्यकारों का प्रादुर्भाव हुआ, जो अन्य किसी काल में दिखाई नहीं पड़ता। इन सबमें मीरा जैसा अद्भुत एवं विलक्षण व्यक्तित्व तो अनेक शतियों में भी दुर्लभ है। स्त्री होने के बावजूद बद्धमूल धारणाओं का विरोध करते हुए व्यवस्था को कटघरे में खड़ा करना तथा पुरुष-प्रधान मानसिकता को चुनौती देना, उस समय आम बात नहीं थी। अनुभव प्रसूत एक-एक शब्द को मीरा अपनी रचनाधर्मिता से सार्थकता प्रदान करती है। मीरा के सम्बन्ध में गणपतिचन्द्र गुप्त के विचार अत्यंत सटीक प्रतीत होते हैं – "उनमें हम अद्भुत साहस, अद्भुत धैर्य एवं अद्भुत सहजता पाते हैं। वे अपने लक्ष्य के प्रति इतनी अधिक आस्थावान एवं दृढ़ हैं कि विषपान तक की स्थिति उन्हें विचलित नहीं कर पाती। पारिवारिक विरोध, सामाजिक भर्त्सना एवं लोकनिंदा भी उनके तेजस्वी व्यक्तित्व को तनिक भी नहीं छू पाती। यही कारण है कि वे अपनी आत्मा की आवाज को, अपने हृदय के क्रंदन को, अपने मन के उल्लास को, अपनी भावनाओं के आवेग को और अपनी अनुभूतियों के प्रवाह को निर्बाध रूप में व्यक्त कर पायीं।"¹

मीरा की भक्ति-भावना पर कई भक्ति-पद्धतियों, सम्प्रदायों का प्रभाव अवश्य था किन्तु प्रेम दीवानी मीरा ने किसी भी भक्ति-सम्प्रदाय में बंधकर रचना नहीं की। अतः मीरा की भक्ति-पद्धति को किसी वर्ग-विशेष में परिगणित करना अन्यायपूर्ण होगा। मीरा ने तो केवल अपने श्रीकृष्ण-प्रेम को शब्दों में बाँधने का प्रयत्न किया है, अपने आराध्य के प्रति श्रद्धा सुमन अर्पित किये हैं और यह एक संयोग मात्र ही है कि उसमें भक्ति के विविध सम्प्रदायों एवं पद्धतियों की झाँकी मिलती है। मीरा की भक्ति हृदय की है, ज्ञान से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसमें हृदय का सहज उद्गार है जो न तो सामाजिक बंधनों को स्वीकार करता है और न धार्मिक मर्यादाओं को मानता है। यह अपने आराध्य देव पर पूर्णतया समर्पित माधुर्य-भाव की भक्ति है। अपने प्रिय के सौन्दर्य का अंकन, उससे मिलने की तीव्र उत्कंठा तथा विरह वेदना की अतिशयता ही मीरा की भक्ति की मुख्य विशिष्टता है। मीरा का व्यक्तित्व और उसका समग्र काव्य उसकी मधुरा भक्ति का चरमोत्कर्ष है।

भक्तिकाल में दर्शन की नींव पर ही विविध सम्प्रदायों का उदय एवं अस्त हुआ है। अतः भक्ति की दीर्घ परम्परा में सभी भक्त-कवियों के अपने-अपने दर्शन देखे जा सकते हैं। यद्यपि भक्त कवि मूलतः भक्त हैं दार्शनिक नहीं, तथापि उनका दर्शन-ज्ञान दार्शनिक ज्ञान न होकर तत्संगति एवं निज की अनुभूति की देन है। उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र दार्शनिकता का पुट उनके जीवन दर्शन को ही उद्घाटित करता है। वैसे भी दर्शन और साहित्य का अटूट सम्बन्ध है। साहित्य में जहाँ ईश्वर के सर्वव्यापक विश्वात्मक सुन्दर रूप के दर्शन होते हैं वहीं दर्शन में उसके सत्य रूप के उदघाटन पर बल दिया जाता है। दर्शन में जहाँ ज्ञान की प्रधानता होती है वहीं साहित्य में भावों की। दर्शन में जहाँ तर्क-वितर्क के जरिए किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है वहीं साहित्य में भावनाओं के प्रवाह में बहते हुए पाठक आनंद की अनुभूति

करता है | दरअसल दर्शन और साहित्य दोनों जीवन के अंतरतम के दर्पण हैं – एक विवेक पर आश्रित है दूसरा राग पर | दोनों आत्मानुभव हैं किन्तु साहित्य जहाँ आनंदमय आत्मानुभव है वहीं दर्शन प्रकाशमय आत्मानुभव है | किन्तु एक बात तो स्पष्ट है कि दार्शनिक कल्पना के बिना महान काव्य की सत्ता असंभव है | दरअसल दर्शन ही साहित्य का पथ निर्माता है |

मीरा का दर्शन बौद्धिकता एवं तत्वचिंतन से ओतप्रोत न होकर लोकसंस्पर्श से आप्लावित है | मीरा का दर्शन ज्ञान-पक्ष की प्रमुखता से युक्त बोझिल न होकर हृदयपक्ष का अबाध उद्गार है जिसके अनन्य प्रवाह में पाठक भी सराबोर हो जाता है | अतः मीरा का दर्शन आत्मगत एवं सौन्दर्यशास्त्रीय दुनिया को निर्मित करनेवाला मनोविज्ञान नहीं है अपितु सामाजिक मुक्ति एवं स्वाधीन शरीर-मनोजगत का निर्माण करनेवाला माध्यम है | इसका सबसे पुनीत पक्ष यह है कि यहाँ मीरा की अंतर्दृष्टि बहिर्जगत के लिए तिरोहित हो जाती है | मीरा अपनी अंतर्दृष्टि के आलोक में बहिर्जगत को पूर्ण प्रकाशित कर एक नई दुनिया का संधान करना चाहती है जिसमें परंपरागत धारणाएँ पूर्णतः तिरोहित हो जाएँ, यहीं आकर उनका काव्य परम्परागत धारणाओं से भिन्न हट कर साहित्य, समाज एवं चिंतन को एक नूतन आयाम प्रदान करता है |

मीरा के काव्य पर विद्वानों ने कई दार्शनिक मतवादों का प्रभाव माना है परन्तु मीरा ने कोई पंथ, जाति-धर्म या सम्प्रदाय नहीं बनाया और न ही अपनाया | डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर के अनुसार, “मीरा के जीवन से स्पष्ट हो जाता है कि वे अपनी पारिवारिक, समस्याओं के साथ जूझती रहीं | उन्हें किसी सम्प्रदाय में दीक्षित न होने के कारण तत्वचिंतन का अवकाश नहीं मिला | उनका जीवन दर्शन मात्र प्रेम और भक्ति का ही है | वे प्रेम दीवानी थीं, प्रेम ही उनका जीवन था |”² अतः स्पष्ट है कि मीरा किसी दार्शनिक उहापोह में नहीं फंसी थी | अतः मीरा का जीवन दर्शन मात्र प्रेम एवं भक्ति था जिसे किसी दार्शनिक तर्क-वितर्क की आवश्यकता नहीं थी | मीरा अपने ‘स्व’ के अस्तित्व की यात्रा में ‘सर्व’ को साथ लेकर सबके साथ होकर रहती है | कवयित्री के रूप में मीरा की काव्यात्मक शैली, भक्ति की गहराई, प्रेम की प्रगाढ़ता एवं व्यंजनापरक रचनात्मक क्षमता पुरुष श्रेष्ठता की विचारधारा के उस बोधिवृक्ष को गिराती है जो महिला को ‘बुद्धिहीना हो तुम’ का अहसास करवाता है | मीरा जिस घृणित भाव से सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पराधीन मूल्यों को चुनौती देती है उतनी ही परिपक्वता, समझ एवं सम्पूर्णता के साथ अध्यात्म के तात्त्विक मर्म का उद्घाटन करती है | यह उसके व्यक्तित्व की सकारात्मक रचनाशीलता एवं वैचारिक गहनता का परिचायक है |

मीरा के भक्ति काव्य में अभिव्यक्त ईश्वर, माया एवं जगत की स्थिति को निम्नवत देखा जा सकता है –

1) मीरा के भक्ति काव्य में ईश्वर की स्थिति:

मीरा कोई दार्शनिक नहीं थी, अतः मीरा का उद्देश्य किसी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ब्रह्म-निरूपण करना नहीं था | मीरा की भक्ति माधुर्य भाव की होने के कारण उनके प्रियतम श्रीकृष्ण ही उनके लिए सर्वस्व थे एवं एक सच्चे प्रेमी के अनुरूप मीरा ने भी स्वयं को उनकी रूप छवि पर न्योछावर कर दिया था | किन्तु एक भक्त के लिए अपने परम आराध्य ईश्वर का स्वीकार भी सुलभ नहीं होता, मीरा के लिए भी सुलभ नहीं था | मीरा ने अपने अश्रुजल से सींच-सींचकर अपने आराध्य के प्रति प्रेम बेल को विकसित किया तथा विविध मत-मतान्तरों का मंथन करके श्रीकृष्ण-भक्ति रूपी घी को प्राप्त किया एवं सारहीन छाछ रूपी तत्वों को त्याग दिया –

“असुवाँ जल सींच-सींच प्रेम बेल बूयाँ |

दध मथ घृत काढ लयाँ डार दयाँ छूयाँ ॥”³

मीरा पर वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद का प्रभाव होने से उन्होंने भी ईश्वर को सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों में स्वीकार किया है। फलतः मीरा ईश्वर के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों की आराधिका है। किन्तु इनमें से मीरा को ईश्वर का सगुण रूप ही अधिक मान्य रहा है। उनकी माधुर्य भक्ति के लिए ईश्वर का यही रूप आवश्यक भी था। इसी सगुणोपासना में मीरा अनंत आनंद का अनुभव करती है। मीरा के लिए श्रीकृष्ण संजीवनी बूटी के समान हैं जिनमें उनके प्राण अटके हैं –

“अटक्याँ प्राण सांवरो प्यारो जीवण मूर जड़ी ॥”⁴

अन्य कृष्ण-भक्तों के समान मीरा ने भी कृष्ण के दो रूपों का प्रधान रूप से वर्णन किया है – रसिक रूप एवं लोकरक्षक रूप। श्रीकृष्ण के रसिक रूप के अंतर्गत मीरा ने रूप छवि, चीरहरण लीला, पनघट लीला आदि का विषद वर्णन किया है। मीरा ने सर्वत्र कृष्ण की माधुरी रूप छवि का वर्णन किया है, जो उनके जीने का एकमात्र आधार है। कृष्ण की चीरहरण लीला का वर्णन करती हुई मीरा अपनी सखी को संबोधित करती हुई कहती है कि वह रसिक कृष्ण कदम्ब की डाली पर बैठा हुआ था और जैसे ही मैं पानी भरने के लिए यमुना में घुसी कि वह उतरकर नीचे आया और मेरी साड़ी उठाकर ले गया –

“आज अनारी ले गयो सारी, बैठो कदम की डारी, हे माय।

म्हारे गेल पञ्चो गिरधारी, हे माय, आज अनारी।

मैं जल जमुना भरण गई थी, आ गयो कृश्र मुरारी, हे माय।

ले गयो सारी अनारी म्हारी, जल में उभी उघारी, हे माय ॥”⁵

कृष्ण के नटखट रूप का वर्णन भी मीरा ने पनघट लीला के अंतर्गत किया है। अपनी सखी को संबोधित करते हुए मीरा कहती है कि मैं कलश रखे हुए पानी भरने के लिए जा रही थी कि वह साँवरा सुन्दर कृष्ण मिल गया। उसने मुझ पर कुछ ऐसा जादू किया कि मैं उसे देखते ही उस पर मोहित हो गई। मैंने लोकलाज को त्याग दिया तभी जाकर मेरा कार्य सिद्ध हुआ –

“हूँ जल भरने जात थी सजनी, कलस माथे करयो।

साँवरी सी किसोर मूरत, कछुक टोनो करयो।

लोकलाज बिसारी डारी, तबहीं कारज सरयो ॥”⁶

मीरा ने कृष्ण के लोकरक्षक एवं उद्धारक रूप का भी वर्णन किया है। मीरा अपने मन को श्रीकृष्ण के चरणों का स्पर्श करने का अनुरोध करती है क्योंकि ये चरण सुन्दर एवं कोमल होने के बावजूद संसार के त्रिविध तापों – दैहिक, दैविक, भौतिक – का नाश करने वाले हैं। इन्हीं चरणों के स्पर्श से भक्त प्रह्लाद, ध्रुव आदि का उद्धार हुआ है –

“मन थें परस हरि रे चरण।

सुभग सीतल कँवल कोमल, जगत ज्वाला हरण।

इन चरण प्रह्लाद परस्योँ, इन्द्र पदवी धरण।

इन चरण ध्रुव अटल करस्योँ, सरण असरण सरण ॥”⁷

मीरा पर निर्गुण भक्ति का भी यत्र-तत्र प्रभाव दिखाई पड़ता है। ईश्वर से अद्वैत की स्थिति मीरा भी अनुभव कराती है – “तुम बिच हम बिच अंतर नाही, जैसे सूरज घामा ॥” किन्तु मीरा को ईश्वर का सगुण रूप ही इष्ट है। वह

ईश्वर के सगुण रूप की ओर ही आकृष्ट होती हैं | जहाँ एक ओर मीरा अपने परम आराध्य के प्रति न केवल स्वयं आकर्षित होकर सर्वस्व समर्पण करती है अपितु अपनी सखियों एवं अन्य सांसारिकों से भी अनुरोध कराती है कि – “असा प्रभु जाण दीजै हो |” साथ ही माधुरी भक्ति के चलते वह अपने प्रियतम को उपालंभ देने से भी नहीं चुकती –

“जावो हरि निरमोहिडा, जाणी थांरी प्रीत |

जावा दे जावा दे जोगी किसका मीत ||”⁸

2) मीरा के भक्ति काव्य में माया की स्थिति:

माया के विवेचन के मूल में दार्शनिकों का उद्देश्य संसार का सहज स्वभाव दिखाना ही रहा है | माया का उद्देश्य ही होता है साधक को भ्रमित करना | माया के कारण संसार हमें शाश्वत सत्य प्रतीत होता है | वास्तव में वह स्वप्नवत् मिथ्या है | असल में माया ब्रह्म की ही सृष्टि है | रामचंद्र तिवारी के अनुसार, “माया की दो शक्तियाँ हैं – ‘आवरण’ और ‘विक्षेप’ | ‘आवरण’ शक्ति से यह वस्तु के वास्तविक स्वरूप को छिपा देती है और ‘विक्षेप’ शक्ति से उनमें नवीन वस्तु का आरोप कर लेती है | अपनी इन्हीं शक्तियों से माया ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को ढँक कर उसमें आकाश, जल, अग्नि, तथा पृथ्वी आदि के होने का भ्रम उत्पन्न कर देती है |”⁹ स्पष्ट है कि माया के कारण ही संसार की असत्य रूप में प्रतीति होती है | माया सदैव भक्ति के पथ में व्यवधान उपस्थित करती है | अतः सच्चा भक्त वही है जो भक्ति के पथ पर अडिग रहता है और माया के जाल से स्वयं को मुक्त करता है | मीरा भी स्वयं को मायाजनित बंधनों से मुक्त करती है | उसे यह मायाजनित संसार बेरी के काँटों के समान दुखमय एवं कष्टप्रद प्रतीत होता है – “यो संसार बीडरो काँटो” इस सम्बन्ध में विश्वनाथ त्रिपाठी का मत दृष्टव्य है – “मीरा को भगवान ही सर्वस्व थे | उनको मायालिस संसार अच्छा नहीं लगता था | माया का मर्म जानने के कारण ही संसार की भयानकता भी उन्हें प्रकट होती थी |”¹⁰

मीरा स्पष्ट शब्दों में कहती हैं कि उनकी प्रीति तो श्रीकृष्ण के चरणों में लग गयी है | उनके दर्शन के बिना उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता और यह संसार तो माया का रूप है तथा स्वप्न की भांति निस्सार है | भवसागर भाव का कारण है, परिवार आदि मोह संसार के बंधन हैं | इसीलिए मीरा ने इन सब को त्याग कर स्वयं को पूर्णतः ईश्वर के चरणों में समर्पित कर दिया है –

“म्हा लागौ लगण सिरि चरणां री |

दरस बिणा म्हाने कछु णा भावां जग माया या सुपणां री |

भो सागर भय जग कुल बंधन, डार दया हरि चरणा री |”¹¹

ईश्वर की सहायता से माया के बंधनों से मुक्त हो जाने का आग्रह प्रकट कर माया संबंधी मीरा का दृष्टिकोण भक्तों का मार्ग प्रशस्त करने वाला है |

3) मीरा के भक्ति काव्य में जगत की स्थिति:

भक्त कवियों के लिए जगत निस्सार है | जगत का निर्माण भी स्वयं ईश्वर ने ही किया है किन्तु इसकी सत्ता भ्रान्तिमूलक है | इसका स्वरूप अत्यंत चंचल, गतिशील, अस्थिर, क्षणिक एवं नश्वर है | इस भ्रममूलक संसार को सत्य माननेवाले को अंततः पछताना पड़ता है | अतः मीरा की दृष्टि में यह संसार एवं सांसारिक बंधन क्षणिक हैं | जगत के उल्लासों में स्वयं को गँवाए बिना हरिगुण गान ही भक्त का कर्तव्य है | धन, वैभव, आडम्बर, सुखभोग, पद, अधिकार आदि सभी जगत के रूप हैं, जो मनुष्य को बांधे रखते हैं | सच्चा भक्त वही होता है जो इन सबसे स्वयं को मुक्त कर ईश्वर भक्ति में तल्लीन होता है | मीरा ने भी इन सब को अवरोध मानकर इन सब का त्याग किया था –

“गहणा गाँठी राणा हम सब त्यागा, त्याग्यो कर रो चूडो |”¹²

मीरा ने अपने काव्य में जगह-जगह संसार एवं सांसारिक आकर्षणों की निस्सारता को विवेचित किया है। उन्होंने संसार की क्षणभंगुरता और नश्वरता की तुलना में श्रीकृष्ण-भक्ति को श्रेष्ठतर सिद्ध किया है। अतः अपनी सखियों को संबोधित करते हुए वह कहती है कि वे इस संसार एवं सांसारिक आकर्षणों की निरर्थकता को जानकर स्वयं को इस जगत की भड़कीली रोशनी से दूर करें और श्रीकृष्ण-भक्ति में स्वयं को समर्पित कर अपने जीवन को सार्थकता प्रदान करें –

“झूठा माणिक मोतिया री, झूठी जगमग जोति |

झूठा आभूषण री, साँची पियाजी री पोती ।”¹³

मीरा संसार की नश्वरता की ओर संकेत करते हुए यह स्पष्ट कराती हैं कि मनुष्य व्यर्थ ही स्वयं को विविध संबंधों में जकड़कर अकर्मण्य बना लेता है। इस संसार में यदि कोई सम्बन्ध शाश्वत एवं सच्चा है तो वह केवल श्रीकृष्ण के साथ है बाकी सारे रिश्तों की आधारशिला स्वार्थ है –

“माता पिता कुटुंब काबिला सब मतलब गरजी

ये संसार सगो नहीं कोई, साँचा रघुवर जी ।”¹⁴

यही कारण है कि मीरा जगत को सत्य नहीं मानती। मीरा के अनुसार जो लोग जगत को अंतिम सत्य मानते हैं उन्हें अंततः पछताना पड़ता है। अतः सभी को इस बात को समझ लेना चाहिए कि मनुष्य जन्म की प्राप्ति बार-बार नहीं होती। साथ ही यह जीवन मुठ्ठी से रेत की तरह निरंतर फिसलता एवं घटता रहता है। इस जगत से मुक्ति हेतु जीव को गिरधर नागर का ही सहारा लेना पड़ता है। उन्हीं से पार उतरा जा सकता है -

“नहिं अस जनम बारम्बार |

पर बलौ धौ पुण्य प्रगट्यो, लह्यो नर अवतार |

घटे पल-पल, बढे छिन-छिन, जात लागि न बार |

धरनि पत्ता गिरी परे, तै फिरि न लागो डार |

सूर हरि कै भजन करि- करि उतरी पल्ले पार |

जगमां जीवन थोडा, कुनें लयां भवभार |

मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, थे बल उतरया पार ।”¹⁵

निष्कर्ष:

मीरा के अनुसार संसार एवं सांसारिक बंधन क्षणिक हैं, जिनसे मुक्ति के प्रयास आवश्यक है। जीव को इस बात का ज्ञान होना जरूरी है कि यह जगत दिन की हाट के समान है जो साँझ होते ही उठ जाएगी – “यो संसार चहर रो बाजी, साँझ पड्या उठ जासी ।” अतः उसका यही प्रयास होना चाहिए कि जैसे भी हो वह भक्तिमार्ग वरण कर अपने जीवन को सार्थकता प्रदान करे। समग्रतः मीरा ने किसी दार्शनिक की भांति ईश्वर, माया, जगत आदि पर विचार नहीं किया। वह तो मूलतः प्रेम दीवानी थी। किसी विचारधारा का उदघाटन उनका उद्देश्य कदापि नहीं था। उनका समूचा काव्य श्रीकृष्ण-प्रेम से सराबोर है। मीरा की भक्ति में व्यक्त ईश्वर, माया एवं जगत संबंधी विचारों के जरिए भी उनकी दृढतम प्रेम-भावना को ही वाणी मिली है। उनके ईश्वर एक ओर तो रसिक रूप में मोहित करते हैं तो दूसरी ओर लोकरक्षक के रूप में भक्तों का उद्धार भी करते हैं। उनकी दृष्टि में भक्ति पथ का सबसे बड़ा व्यवधान माया है। अतः भक्त को उस से मुक्ति हेतु प्रयत्नरत होना चाहिए। माया भ्रममूलक है जिससे भगवत-प्रेम ही उबार सकता है। इसके लिए भक्त में दृढ संकल्प एवं इच्छाशक्ति की आवश्यकता है। तथा जगत नश्वर होने के साथ-साथ

चार दिन की चाँदनी है | अतः भक्त को इसके मोह से बाहर निकलना चाहिए | मीरा के ये विचार निश्चित ही वर्तमान स्वार्थमय परिवेश में अपनी उपादेयता रखते हैं |

सन्दर्भ सूची:

1. गणपतिचन्द्र गुप्त, साहित्यिक निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 1999, पृ.सं.667
2. डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर, मीराबाई, भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली, सं. 1990, पृ. सं.51
3. प्रो. देशराज सिंह भाटी, मीराबाई और उनकी पदावली, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2009, पृ. सं.205
4. वही, पृ. 200
5. वही, पृ. 196
6. वही, पृ. 370
7. वही, पृ. 159
8. वही, पृ. 176
9. रामचन्द्र तिवारी, कबीर-मीमांसा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 1992, पृ.125
10. विश्वनाथ त्रिपाठी, मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1989, पृ.91
11. प्रो. देशराज सिंह भाटी, मीराबाई और उनकी पदावली, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2009, पृ. सं.328
12. वही, पृ. 225
13. वही, पृ. 217
14. वही, पृ. 322
15. वही, पृ. 383